शिक्षा संवाद
2021, 8(1-2): 11-21
ISSN: 2348-5558
©2021, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

संवाद

वंचितों की शिक्षा

ज्योतिराव फुले

भारत के समाज सुधारक ज्योतिराव फुले ने शिक्षा आयोग, 1882 को दिए अपने वक्तव्य में सरकार की शिक्षा नीति, जिसने जनसाधारण को ''उपेक्षा और निर्धनता में घुटने'' के लिए छोड़ दिया है, को उच्च वर्ग के अनुकूल बताया है और उसमें सुधार करने के लिए उपाय सुझाए हैं।

मेरा मुख्य अनुभव इन स्कूलों [उनके द्वारा पूना में निम्न वर्ग के लिए खोले गए स्कूलों -संपादित] से प्राप्त हुआ था। मैंने इस प्रेसीडेंसी में उपलब्ध प्राथमिक शिक्षा पर भी कुछ नजर डाली, और शिक्षा विभाग के निम्नतर स्कूलों के सिस्टम और उनमें नियोजित कार्मिकों के बारे में राय बनाने का अवसर प्राप्त हुआ। मैंने कुछ वर्ष पूर्व एक मराठी पैम्फलेट लिखा था जिसमें वर्तमान शिक्षा व्यवस्था, जिसमें उच्चतर शिक्षा के लिए अपेक्षाकृत अधिक निधियां प्रदान करके केवल ब्राह्मणों तथा उच्च वर्गों को शिक्षा प्रदान की जाती है और अधिसंख्य लोगों को उपेक्षा एवं गरीबी में घुटने के लिए छोड़ दिया जाता है, में ब्राह्मणों के फैलाए हुए धार्मिक कर्मकांडों और संयोग से अन्य मामलों का खुलासा किया था। मैंने पुस्तक के अंग्रेजी आमुख में अभिव्यक्त विचारों का सारांश लिखा, जहां तक उसका संबंध वर्तमान जांच से है, उसके अंशों को मैं यहां उद्धृत करता हूँ—

संभवत: मामले के इस हद तक बिगड़ जाने के लिए सरकार को जिम्मेदार ठहराया जाना उचित ही होगा। उच्चतर शिक्षा के लिए अपेक्षाकृत अधिक निधियां प्रदान करने और अधिसंख्य लोगों की उपेक्षा करने के पीछे उनके उद्देश्य जो कुछ भी रहे हों, सभी को यह बात स्वीकार्य होगी कि अधिसंख्य लोगों के प्रति न्याय की बात की जाए तो ऐसा नहीं होना चाहिए। यह तथ्य सभी स्वीकार करते हैं कि भारतीय साम्राज्य के राजस्व का अधिकांश भाग खेतिहर श्रमिकों से- उनके गाढ़े पसीने से- प्राप्त होता है। उच्च और धनाढ्य वर्ग राज्य के खजाने में या तो बहुत थोड़ा योगदान करते हैं या करते ही नहीं हैं। एक विद्वान अंग्रेजी लेखक ने कहा है, ''हमारी आय अधिशेष लाभों से नहीं होती, वरन् पूँजी से होती है; ऐशो-आराम की चीजों से नहीं, वरन् निर्धनतम लोगों की जरूरतों से होती है। यह पाप और आंसुओं की कमाई है।''

इस प्रकार प्राप्त किए गए राजस्व के एक बड़े हिस्से को सरकार उच्च वर्गों की शिक्षा पर बहुत अधिक खर्च करे, और केवल इन्हीं वर्गों को इसका लाभ मिले, तो यह और कुछ भले ही हो, न्यायसंगत और समानता की बात कतई नहीं हो सकती। ऐसा प्रतीत होता है कि इस वास्तविक उच्च वर्ग की शिक्षा को संरक्षण प्रदान करने के पीछे उनका उद्देश्य ऐसे अध्येता तैयार करना है जो ऐसा माना जाता है कि भविष्य में बिना पैसे के और बिना कीमत के शिक्षा प्रदान करेंगे। उनका कहना है कि यदि हम उच्च वर्गों के मस्तिष्क में ज्ञान के प्रति प्रेम पैदा कर दें, तो उसके परिणामस्वरूप व्यक्तियों को उच्च स्तर की नैतिकता, ब्रिटिश सरकार के प्रति लगाव, और उन्हें प्राप्त बौद्धिक आशीर्वाद को अपने देशवासियों के बीच फैलाने की अदम्य इच्छा पैदा होगी।

सरकार के इन उद्देश्यों के संबंध में लेखक ने ऊपर राज्यों की ओर इशारा करते हुए कहा है कि हमने इससे बेहतर लाभकारी और इससे बेहतर आदर्शवादी दर्शन के बारे में नहीं सुना। पाश्चात्य विश्व में, विशुद्ध रूप से लोकप्रिय ज्ञान के एजेंटों द्वारा लाए गए चमत्कारी

परिवर्तनों के साक्षी रहे लोगों द्वारा यह प्रस्ताव किया जाता है कि भारत के दौ सौ मिलियन लोगों के दोषों को उच्च वर्गों को और उनको स्वयं को श्रेष्ठतर शिक्षा प्रदान करके दूर किया जाए। हम भारतीय विश्वविद्यालयों के अपने मित्रों से पूछते हैं कि वे अपने प्राप्त हुए अनुभव से इस सिद्धांत की सच्चाई का ऐसा कोई एक भी उदाहरण बता दें। उन्होंने समृद्ध लोगों के अनेक बच्चों को पढ़ाया है और वे अपने कुछ शिष्यों को लौकिक परिप्रेक्ष्यों में भौतिक रूप से बहुत अधिक आगे बढ़ाने का माध्यम भी बने हैं, परंतु उन्होंने अपने साथियों के पुनरुत्थान के महान कार्य में क्या योगदान किया है? क्या उन्होंने अधिसंख्य जनता के लिए काम करना शुरू किया है? क्या उनमें से किसी ने अपने बदनसीब अथवा अल्प बुद्धि वाले देशवासियों को शिक्षा प्रदान करने के लिए अपने घर पर अथवा अन्यत्र कहीं कक्षाएं लगाई हैं? या उन्होंने अपने ज्ञान को, उपेक्षित अशिष्ट लोगों के सम्पर्क में आने से बचाने के लिए, एक व्यक्तिगत उपहार के रूप में अपने तक सीमित रख लिया है? क्या उन्होंने किसी रूप में जनहित को बढ़ावा देने और देशभक्ति के साथ लोकोपकार का कर्ज अदा करने के बारे में चिंता दर्शाई है? किन आधारों पर ऐसा दावा किया जाता है कि ऊँचे वर्गों की शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाना ही लोगों के नैतिक एवं बौद्धिक कल्याण की प्रगति का सर्वश्रेष्ठ तरीका है? अभिजात वर्ग की ओर से यह बड़ा शानदार तर्क है, जैसे कि केवल यही एक तर्कसंगत बात हो.....!

सभी उच्च कार्यालयों में ब्राह्मणों का एकाधिकार उच्च वर्ग की शिक्षा के सरकारी तंत्र की सर्वाधिक स्पष्ट प्रवृत्तियों में से एक रही है। यदि खेतिहरों के कल्याण का कार्य दिल से किया जाए, यदि दुरुपयोग करने वाले समुदाय को रोकना सरकार का कर्तव्य है, तो उन्हें इस एकाधिकार को दिन-ब-दिन कम करना होगा ताकि लोक सेवाओं में अन्य जातियों के लोगों का आना भी शुरू हो सके। संभवत: कुछ लोग यह कहें कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में यह व्यवहार्य नहीं है। हमारा एकमात्र उत्तर यह है कि यदि सरकार उच्च वर्ग की शिक्षा की ओर थोड़ा कम ध्यान दे, और जन सामान्य की शिक्षा पर ज्यादा ध्यान दे, क्योंकि उच्च वर्ग

अपनी चिंता स्वयं करने में समर्थ हैं, तो ऐसे लोगों के निकाय को तैयार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी, जो हर तरीके से योग्य होगा और संभवत: नैतिकता एवं चाल-चलन में भी कहीं बेहतर होगा।

इस खण्ड को लिखने का मेरा उद्देश्य मेरे शूद्र भाइयों को न केवल यह बताना है कि उन्हें ब्राह्मणों द्वारा किस प्रकार ठगा गया है, अपितु उच्च वर्ग की शिक्षा की उस हानिकारक व्यवस्था की ओर सरकार की आंखें खोलना भी है, जिसे अब तक अपनाया जा रहा है, और जिसे व्यापक एवं सार्वभौम सहानुभूति के साथ, बंगाल के वर्तमान लेफ्टिनेंट गवर्नर सर जॉर्ज कैम्पबेल जैसे राजनयिक शातिराना और सरकार के हितों के लिए हानिकारक मानते हैं। मैं ईमानदारी से उम्मीद करता हूँ कि सरकार को जल्दी ही अपने तौर-तरीकों के त्रुटिपूर्ण होने का पता चलेगा, यह ऐसे लेखकों अथवा लोगों पर कम विश्वास करेगी जिनकी आंखों पर उच्च वर्ग का चश्मा चढ़ा हुआ है और यह मेरे शूद्र भाइयों को बंधन की उन जंजीरों से मुक्त करने का श्रेष्ठ कार्य अपने हाथों में लेगी, जो ब्राह्मणों ने किसी सांप की कुण्डली की तरह लपेट दी हैं। किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर चुके मेरे शूद्र भाइयों का भी यह कम दायित्व नहीं है कि वे सरकार के सामने अपने साथियों की सच्ची स्थिति पेश करें और उन्हें ब्राह्मणों की दासता से मुक्त कराने के लिए अपनी ताकत का सर्वश्रेष्ठ प्रयोग करें। प्रत्येक गांव में शूद्रों के लिए एक स्कूल हो; परंतु वह सभी ब्राह्मण स्कूल-मास्टरों से दूर हो ! शूद्र हमारे देश के जीवन और स्नायु-तंत्र हैं, और केवल उनके लिए, न कि ब्राह्मणों के लिए, यह जरूरी है कि सरकार उनकी वित्तीय कठिनाइयों के साथ-साथ राजनैतिक कठिनाइयों को सदैव दूर करे। यदि शूद्रों के दिलोदिमाग को प्रसन्न और संतुष्ट कर दिया जाए तो ब्रिटिश सरकार को भविष्य में अपने प्रति वफादारी के बारे में चिंता करने की आवश्यकता नहीं होगी।

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि इस प्रेसीडेंसी में अधिसंख्य लोगों की प्राथमिक शिक्षा बहुत उपेक्षित रही है। यद्यपि कुछ वर्ष पहले जितने प्राथमिक स्कूल थे, अब उनसे ज्यादा स्कूल विद्यमान हैं, तथापि वे समुदाय की जरूरतों को पूरा करने के लायक नहीं हैं.....।

यहां तक कि कस्बों में भी ब्राह्मण, पुरभू, वंशानुगत वर्ग, जो सामान्यत: लेखनी आधारित व्यवसाय करते हैं, वे और व्यापारी वर्ग प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करते हैं। कृषि करने वाले और अन्य वर्ग किसी नियम की तरह आमतौर पर अपने लिए शिक्षा अर्जित नहीं करते। इस कृषक और अन्य वर्ग में से कुछ लोग प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों में देखे जाते हैं, परंतु अपनी गरीबी एवं अन्य कारणों के चलते ज्यादा समय तक स्कूल नहीं जाते। चूँकि इनका लगातार स्कूल जाना सुनिश्चित करने के लिए कोई विशेष प्रावधान नहीं हैं, अत: जैसे ही उन्हें कोई छोटा-मोटा धंधा अथवा अन्य व्यवसाय मिल जाता है, वैसे ही वे स्कूल छोड़ देते हैं। गांवों में भी कृषक वर्ग अत्यधिक गरीबी के चलते, और इस कारण से शिक्षा से वंचित रह जाते हैं कि उनको मवेशी चराने तथा खेतों की रखवाली करने के लिए अपने बच्चों की जरूरत पड़ती है। स्कूलों की संख्या में बढ़ोतरी के साथ-साथ छात्रवृत्तियों तथा अर्धवार्षिक एवं वार्षिक पुरस्कारों के रूप में विशेष प्रावधान करना उनके बच्चों को स्कूल भेजने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना और इस प्रकार उनके भीतर सीखने के प्रति रुचि पैदा करना सबसे ज्यादा जरूरी है।

मेरे विचार से एक निश्चित आयु तक, कम से कम 12 वर्ष की आयु तक, सभी के लिए प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बना देना चाहिए। मुसलमान भी इन स्कूलों से दूर रहते हैं, क्योंकि मराठी अथवा अंग्रेजी के प्रति उनका कोई लगाव दिखाई नहीं पड़ता है। मुसलमानों के लिए ऐसे कुछ ही प्राथमिक स्कूल हैं जहां उनकी अपनी भाषा पढ़ाई जाती है। महारों, मंगों तथा अन्य निम्न वर्गों को जातिगत पूर्वाग्रहों के कारण सभी स्कूलों से दूर रखा जाता है, क्योंकि उन्हें उच्च वर्गों के बच्चों के साथ नहीं बैठने दिया जाता है। तदुपरांत सरकार द्वारा इनके लिए विशेष स्कूल खोले गए। परंतु ये केवल बड़े कस्बों में ही हैं। सारे पूना के लिए और 5,000 से अधिक की आबादी के लिए केवल एक स्कूल है, और उसमें भी उपस्थिति 30 बालकों से भी कम की है। इस मामले में शैक्षिक प्राधिकरणों को कोई श्रेय नहीं दिया जा सकता। महारानी की उद्घोषणा के वादे के अंतर्गत मैं निवेदन करता हूँ कि महारों,

मंगों और अन्य निम्न वर्गों के लिए, जहां उनकी आबादी अच्छी-खासी हो, वहां उनके लिए पृथक स्कूल खोले जाएं, क्योंकि उन्हें जातिगत पूर्वाग्रहों के चलते स्कूलों में नहीं जाने दिया जाता.....।

जो कुछ सरकारी स्कूल प्रेसीडेंसी में मौजूद हैं, उनके संबंध में, मैं यह अनुरोध करता हूँ कि देखिए उन्हें संतोषजनक और प्रभावी आधार पर प्राथमिक शिक्षा प्रदान नहीं की जा रही है.....।

प्राथमिक स्कूलों में नियुक्त लगभग सभी शिक्षक ब्राह्मण हैं; उनमें से कुछ सामान्य प्रशिक्षण महाविद्यालयों से आए हैं, शेष सभी अप्रशिक्षित लोग हैं। उनके वेतन बहुत कम हैं, जो 10 रू. से ज्यादा कभी-कभार होता है, और उनकी उपलब्धियां भी बहुत निम्न स्तर की हैं। परंतु जैसे कि कोई नियम हो, वे सभी व्यावहारिक शिक्षा देने वाले व्यक्ति नहीं हैं, और जो बच्चे उनसे शिक्षा ग्रहण करते हैं, आमतौर पर निष्क्रियता की आदतें ग्रहण कर लेते हैं और अपने वंशानुगत अथवा अन्य मेहनत वाले अथवा स्वतंत्र व्यवसाय से बचने के लिए नौकरी प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। मैं सोचता हूँ कि प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों को जहां तक संभव हो, प्रशिक्षित होना चाहिए, वे कृषक वर्ग से होने चाहिए और किसी ब्राह्मण शिक्षक, जो धार्मिक पूर्वाग्रहों के कारण स्वयं को आमतौर पर अलग रखता है, से बेहतर ढंग से उनके साथ मुक्त रूप से घुल मिल जाएंगे उनकी जरूरतों और इच्छाओं को समझेंगे। यही नहीं, ये शिक्षक अन्य वर्गों के शिक्षकों की अपेक्षा अधिक लाभकारी रूप से असर पैदा करेंगे, वे जरूरत पड़ने पर हल का हत्था अथवा बढ़ई का बसूला थामने में कोई शर्म महसूस नहीं करेंगे, और वे समाज के निम्न वर्ग के साथ पहले से ही घुलने-मिलने में सक्षम होंगे। उनके लिए प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में सामान्य विषयों के साथ-साथ कृषि एवं सफाई का आरंभिक ज्ञान शामिल होना चाहिए। अप्रशिक्षित शिक्षकों के स्थान पर, जब तक कि वे पूरी तरह दक्ष न हो जाएं, दक्ष प्रशिक्षित शिक्षकों को रखा जाना चाहिए। शिक्षकों का एक बेहतर वर्ग

सुनिश्चित करने के लिए और उनकी स्थिति में सुधार करने के लिए बेहतर वेतन दिए जाने चाहिए.....।

शिक्षा के पाठ्यक्रम में पठन, लेखन, मोडी और बालबोध तथा लेखा होने चाहिए तथा सामान्य इतिहास, सामान्य भूगोल, और व्याकरण की मूलभूत जानकारी के साथ-साथ कृषि की आरंभिक जानकारी और नैतिक कर्तव्यों एवं सफाई के संबंध में कुछ साधारण पाठ शामिल होने चाहिए। गांव के स्कूलों में पढ़ाई अपेक्षाकृत बड़े गांवों के स्कूलों की पढ़ाई से भले ही कम होती हो, परंतु वह कम व्यावहारिक नहीं होती। कृषि संबंधी पाठों के बारे में एक छोटा मॉडल खेत हो, जहां छात्रों को व्यावहारिक शिक्षा प्रदान की जा सके, यह निश्चित रूप से लाभदायक सिद्ध होगा और यदि इसका प्रबंधन सही ढंग से किया जाए, तो देश के लिए बड़ा हितकर सिद्ध होगा.....।

निम्नलिखित तरीकों से प्राथमिक स्कूलों की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए-

(1) जो स्वदेशी स्कूल प्रशिक्षित और प्रमाण-पत्र प्राप्त शिक्षकों द्वारा संचालित किए जाने वाले हैं अथवा किए जा रहे हैं, उनका उपयोग करके, उन्हें उदार रूप से सहायता-अनुदान प्रदान करके।

(2) स्थानीय उपकर निधि के आधे से अधिक हिस्से का केवल प्राथमिक शिक्षा के लिए ही प्रावधान करके।

(3) एक सांविधिक अधिनियम के अंतर्गत नगरपालिकाओं को उनकी अपनी-अपनी सीमाओं में आने वाले सभी प्राथमिक स्कूलों का अनुरक्षण करने के लिए बाध्य करके।

(4) प्रादेशिक अथवा शाही निधियों में से पर्याप्त अनुदान प्रदान करके।

प्रोत्साहन के रूप में, छात्रों को पुरस्कार और छात्रवृत्तियां, तथा शिक्षकों को कैपिटेशन एवं अन्य भत्ते प्रदान करने से इन स्कूलों द्वारा अधिक प्रभावी शिक्षा प्रदान किए जाने की प्रवृत्ति बनेगी।

बड़े कस्बों की नगरपालिकाओं को कहा जाए कि वे प्राथमिक स्कूलों पर किया जाने वाला पूरा व्यय अपनी नगरपालिका क्षेत्र की सीमाओं के भीतर ही करें। परंतु किसी भी स्थिति में उसका प्रबंधन पूरी तरह से उनको नहीं सौंपा जाना चाहिए। उन्हें शिक्षा विभाग के पर्यवेक्षण में रखा जाना चाहिए.....।

शहरों, कस्बों, और कुछ बड़े गांवों में अच्छे-खासे स्वदेशी स्कूल हैं। विशेष रूप से वहां, जहां ब्राह्मण आबादी है। इस प्रेसीडेंसी में सार्वजनिक शिक्षा की अद्यतन रिपोर्टों के अनुसार, यह पाया गया कि 1,049 स्वदेशी स्कूल हैं जिनमें लगभग 27,694 छात्र हैं। वे पुरानी ग्रामीण व्यवस्था के अनुसार चलाए जा रहे हैं। बालकों को आमतौर पर पहाड़े की तालिका रटाई जाती है, थोड़ा मोडी लेखन और पठन कराया जाता है, तथा कुछ धार्मिक बातें सिखाई जाती हैं। नियमानुसार शिक्षक कोई सुधार करने में सक्षम नहीं होते क्योंकि वे शिक्षण कला में प्रशिक्षित नहीं होते हैं। इन स्कूलों में वसूला जाने वाला शुल्क 2 से 8 आना तक होता है। शिक्षक सामान्यत: ब्राह्मण समाज के होते हैं। उनकी योग्यताएं मुश्किल से मराठी पढ़ने और लिखने तथा लगभग तीन के स्केल तक का हिसाब लगा पाने से ज्यादा नहीं होती। वे आजीविका प्राप्त करने के अंतिम उपाय के रूप से शिक्षक बनते हैं। जीवन के अन्य क्षेत्रों में उनकी असफलता अथवा अयोग्यता उन्हें स्कूल खोलने के लिए मजबूर कर देती है। स्वदेशी स्कूल अच्छे स्कूल तब तक नहीं बन सकते जब तक कि उनके वर्तमान शिक्षकों के स्थान पर ट्रेनिंग कॉलेजों से आने वाले लोगों को तथा देशी भाषा में 6ठी कक्षा उत्तीर्ण करने वालों को न रखा जाए। ये वर्तमान शिक्षक राजकीय सहायता को मर्जी से स्वीकार कर लेंगे, परंतु इस प्रकार खर्च की गई राशि व्यर्थ जाएगी। मेरी जानकारी में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जिसमें किसी ऐसे स्कूल को सहायता-अनुदान प्रदान किया गया हो।

यदि कहीं यह दिया भी जा रहा होगा तो दुर्लभ मामलों में। मेरे विचार से, ऐसे स्कूलों को तब तक कोई सहायता-अनुदान प्रदान नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि मास्टर को प्रमाण-पत्र नहीं मिला हुआ हो। परंतु यदि प्रमाण-पत्र मिला हो अथवा दक्ष शिक्षक पाए जाएं, तो सहायता-अनुदान प्रदान किया जाना चाहिए और यह बहुत श्रेयस्कर होगा.....।

कुछ समय पहले से पूरे देश में यह आवाज उठती रही है कि सरकार ने उच्चतर शिक्षा के लिए तो पर्याप्त प्रावधान किए हैं, जबकि अधिकांश जनसंख्या उपेक्षित रही है। कुछ सीमा तक यह बात न्यायोचित भी है, यद्यपि उच्चतर शिक्षा का प्रत्यक्ष लाभ ले रहे वर्ग इसे आसानी से स्वीकार नहीं करेंगे। परंतु इस सब के लिए इस देश का कोई भी शुभचिंतक यह नहीं चाहेगा कि सरकार इस समय उच्चतर शिक्षा को दी जा रही अपनी सहायता वापस ले ले। वे जो कुछ चाहते हैं वह यह है कि, चूँकि एक वर्ग अथवा प्रजा की उपेक्षा की गई है, अत: उस उपेक्षित वर्ग की प्रगति की भी उतनी ही चिंता की जानी चाहिए जितनी दूसरे वर्ग की की जा रही है। भारत में शिक्षा अभी शैशवकाल में ही है। उच्चतर शिक्षा से राजकीय सहायता को वापस ले लेना शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाने के प्रयासों के लिए घातक ही सिद्ध होगा।

ब्राह्मणों और पुरभू जैसे उच्च और सम्पन्न वर्गों, विशेष रूप से लेखनी से आजीविका चलाने वाले वर्गों, में शिक्षा के लिए रुचि पैदा हो चुकी है, और जहां तक इन वर्गों का संबंध है, राजकीय सहायता देना धीरे-धीरे बंद किया जा सकता है; परंतु मध्यम और निम्न वर्गों में, जिनमें उच्च शिक्षा की अभी कोई प्रगति नहीं हुई है, इस प्रकार सहायता रोक देना बहुत बड़ी कठिनाइयां पैदा कर देने वाला होगा.....।

वर्तमान में सरकारी स्कूलों में अपनाई जा रही सरकारी छात्रवृत्तियों की व्यवस्था भी त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि यह अन्य वर्गों को छोड़कर उन वर्गों को अनावश्यक प्रोत्साहन देती है

जिनमें शिक्षा के प्रति रुचि पहले ही जागृत हो चुकी है। प्रणाली में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि इन छात्रवृत्तियों में से कुछ छात्रवृत्तियां ऐसे वर्गों को दी जाएं जिनके बीच शिक्षा की कोई प्रगति नहीं हुई है।

प्रतिस्पर्धा द्वारा छात्रवृत्ति प्रदान करने की प्रणाली यद्यपि सार रूप में समानतापूर्ण तो है, तथापि इससे अन्य वर्गों के बीच शिक्षा का प्रसार होने की संभावना नहीं है। स्थानीय निवासियों को लाभकारी रोजगार प्राप्त होने के प्रश्न के संबंध में, यह याद रखा जाए कि शिक्षित स्थानीय निवासी, जो अधिकांशत: ब्राह्मण और अन्य उच्च वर्गों से संबंध रखते हैं, अधिकांशत: नौकरी करने के शौकीन होते हैं। परंतु क्योंकि लोक सेवा में उतनी जगह नहीं होती कि उसमें स्कूलों और कॉलेजों से आने वाले सभी शिक्षित स्थानीय निवासी समाहित हो सकें। यही नहीं, वे जो प्रशिक्षण पाठ्यक्रम प्राप्त करके आते हैं, वह तकनीकी अथवा व्यावहारिक स्वरूप का नहीं होता है, इसलिए उनके लिए किसी अन्य दस्तकारी अथवा लाभकारी रोजगार में स्वयं को लगाना बहुत कठिन हो जाता है।

अत: यह बात उठती है कि ऐसे शिक्षित स्थानीय निवासियों की संख्या बहुत अधिक हो गई है जिनको लाभकारी रोजगार प्राप्त नहीं होता। एक निश्चित सीमा तक संभवत: यह बात सही हो कि कुछ व्यवसायों में जगह नहीं हैं, परंतु इससे यह प्रदर्शित नहीं होता कि ऐसे दूसरे कोई लाभकारी रोजगार नहीं हैं जिनमें वे स्वयं को लगा सकें। पूरे देश की बात की जाए तो शिक्षित व्यक्तियों की संख्या फिलहाल बहुत कम है, और हमारा विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं होगा जब हम इस संख्या को सैकड़ों गुना बढ़ा देंगे, और सभी स्वयं को लाभकारी एवं फायदेमंद व्यवसायों में लगाएंगे और नौकरी के पीछे नहीं भागते रहेंगे।

निष्कर्ष रूप में, मैं शिक्षा आयोग से अनुरोध करता हूँ कि वे बालिकाओं के लिए प्राथमिक शिक्षा का प्रसार करने के लिए अधिक उदार पैमाने पर उपायों को मंजूरी देने की दयालुता दिखाएं।

*****

स्रोत: शिक्षा आयोग: ब्रॉम्बे प्रांतीय समिति की रिपोर्ट, समिति के समक्ष रखे गए साक्ष्य तथा शिक्षा आयोग, कलकत्ता को संबोधित स्मारिकाएं, 1884, पीपी 140-145.

*इस दस्तावेज का हिंदी अनुवाद वीरेंद्र कुमार चंदोरिया ने संवाद शिक्षा समिति की पत्रिका शिक्षा संवाद के लिए किया है।